जैन साहित्य के आद्य पुरस्कर्ता

डा० ज्योतिप्रसाद जैन

जैन अनुश्रुति के अनुसार लेखन कला का आविष्कार कर्मभूमि, या सभ्य युग, के उदयकाल में आदि पुरुष भगवान ऋषभदेव ने किया था। उनकी प्रथम शिष्या, जिसके निमित्त से उन्होंने इस क्रान्तिकारी कला का आविष्कार किया था, स्वयं उनकी सुपुत्री ब्राह्मी थी। यही कारण है कि भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी लिपि के नाम से प्रसिद्ध हुई। सिन्धु घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता के अवशेषों में प्राप्त लेखांकित मुद्राएँ इस बात का असंदिग्ध प्रमाण हैं कि अब से छः-सात सहस्र वर्ष पूर्व भी भारतवासी लेखनकला से भलीभाँति परिचित थे और लोक व्यवहार में उसका पर्याप्त उपयोग करते थे। इसके पश्चात् एक ऐसा दीर्घकालीन अन्तराल पड़ा प्रतीत होता है जिसमें लेखनकला बहुत कुछ उपेक्षित रही—तथाकथित वैदिक युग में लेखन का प्रचार बहुत विरल रहा प्रतीत होता है। तथापि ऋग्वेद विश्व पुस्तकालय का अधुनाज्ञात सर्वप्राचीन ग्रन्थ माना जाता है, और इसका रचनाकाल दो सहस्र वर्ष से लेकर एक सहस्र ईस्वी पूर्व के मध्य अनुमान किया जाता है। वेदों की 'ब्राह्मण' और 'आरण्यक' नामक प्रारंभिक व्याख्याओं में से कुछ एक, कई एक उपनिषद् मूल धर्मशास्त्र और संभवतया कुछ एक दार्शनिक सूत्र भी, 6ठी-5वीं शती ईस्वी पूर्व तक रचे और लिखे जा चुके विश्वास किये जाते हैं। इन्द्र और पाणिनि के व्याकरण, सुश्रुत की संहिता (वैद्यक शास्त्र), और कौटिल्य का मूल अर्थशास्त्र भी 5वीं और 3री शती ईस्वी पूर्व के मध्य लिखे जा चुके थे, ऐसा कहा जाता है।

किन्तु, सिन्धुघाटी की उक्त मुद्राओं के अतिरिक्त प्रायः और कोई भारतीय शिलालेख या अभिलेख ऐसा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है जिसका समय निश्चित रूप से छठी शती ई. पूर्व से पहिले का स्थिर किया जा सके। ब्राम्हणों, बौद्धों या जैनों के किसी भी ग्रन्थ की प्रायः एक भी ऐसी प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है जिसे असंदिग्ध रूप से दो हजार वर्ष पुराना भी कहा जा सके। ऊपर जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है वे अवश्य ही मौर्य युग के अन्त (लगभग 200 ई. पू.) के पूर्व की सहस्राब्दि में रचे जा चुके थे। किन्तु रचे जाने के साथ-ही-साथ वे लिपिबद्ध भी किये जा चुके थे, यह केवल अनुमान ही है, निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता।

अस्तु, यद्यपि इस बात में प्रायः सन्देह नहीं है कि संसार की प्राचीन सभ्य जातियों में भारतीय जाति ही लेखन कला का आविष्कार एवं प्रयोग करनेवाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदाचित् सर्वप्रथम जाति थी, तथापि यह भी स्पष्ट है कि महावीर और बुद्ध के समय तक लिखने का प्रचार अत्यन्त विरल रहा था। कम-से-कम, जहाँ तक धर्म-शास्त्रों या धार्मिक साहित्य का सम्बन्ध है, भारत के प्राचीन ऋषि मुनि और आचार्य अपनी स्मृति पर ही अधिक निर्भर रहते थे और लिखने के झंझट में पड़ना पसन्द नहीं करते थे। श्रुति, स्मृति, आगम आदि शब्द बहुत पीछे आकर धार्मिक साहित्य के अङ्कक विशेषों के लिये रूढ़ हुए, प्रारम्भ में यह सब प्रायः पर्यायवाची थे—जो परम्परा से स्मृति में सुरक्षित रहता आया है, मौखिक द्वार से उपदेशा जाता रहा है और कानों से जिसे सुनते चले आये हैं वही स्मृति, आगम या श्रुति रूप धर्मशास्त्र था। महावीर और बुद्ध के पश्चात् भी शताब्दियों पर्यन्त भारतवर्ष में धर्मोपदेश, मौलिक शिक्षण-प्रशिक्षण, तथा व्यक्तिगत एवं राजनैतिक लोक-व्यवहार भी मौखिक-शाब्दिक ही रहता रहा। लिखने या लिखित वस्तुओं का सहारा बहुत कम लिया जाता था। यदि ऐसा न होता तो पार्श्व, महावीर, बुद्ध आदि के उपदेश तुरन्त ही अथवा थोड़े समय उपरान्त ही लिपिबद्ध कर लिये जाते। यह कार्य उक्त धर्मोपदेष्टाओं के चार-पाँच सौ वर्ष पश्चात् ही आरम्भ हुआ। तीसरी-दूसरी शती ई. पूर्व से भारतवर्ष में लिखने का प्रचार, अनेक कारणों से, पर्याप्त द्रुत वेग से बढ़ा। उसी के फलस्वरूप भारत के पुस्तक साहित्य का वास्तविक प्रणयन प्रारम्भ हुआ। जैनों और बौद्धों के पुस्तक साहित्य निर्माण का इतिहास दूसरी पहली शती ईस्वी पूर्व से आगे नहीं जाता, और ब्राम्हण परम्परा के विषय में भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे इस सम्बन्ध में जैनों और बौद्धों से कुछ बहुत आगे रहे हैं। अन्तर इतना ही है कि जैनी लोग अपने साहित्यिक इतिहास के विषय में बहुत सावधान, ईमानदार और यथार्थवक्ता रहे हैं,। बौद्धों का साहित्यिक इतिहास भी सिंहली, चीनी, तिब्बती, वर्मी आदि भारतेतर साधनों के आधार पर बहुत कुछ ठीक-ठीक निर्माण हो चुका है। किन्तु वैदिक परम्परा के अनुयायियों का साहित्यिक इतिहास अभी तक पर्याप्त अस्पष्ट एव विवादग्रस्त बना हुआ है। वह अधिकांशतः अनुमानों, कल्पनाओं, धारणाओं और मनमानी मान्यताओं पर आधारित है। आचार्य शंकर और महाकवि कालिदास जैसे पर्याप्त परवर्ती व्यक्तियों की तिथियों के सम्बन्ध में भी अभी तक एकमत नहीं हो पाया है। विभिन्न विद्वानों के बीच इन विषयों में दो-चार वर्षों या दो-चार दशकों के नहीं, वरन् शताब्दियों का, और कभी-कभी सहस्राब्दियों का मतभेद पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, उत्तरोत्तर सम्मिलित किये जाते रहे क्षेपकों, संवर्धनों, परिवर्धनों आदि के कारण ईस्वी सन् की प्रथम सहस्राब्दि में रचे गये ग्रन्थों के भी वर्तमान में उपलब्ध संस्करण बहुत ही कम ऐसे हैं जो निश्चयपूर्वक मूल रचनाओं की यथावत् प्रतिलिपि कहे जा सकें।

अतएव, जहाँ हम तीर्थंकर पार्श्व और महावीर के सम्बन्ध में, महावीर की शिष्य परम्परा में होनेवाले गुरुओं के सम्बन्ध में जैन साहित्य प्रणयन के प्रारंभिक इतिहास के सम्बन्ध में प्राचीन जैनाचार्यों एवं ग्रन्थकारों और उनका कृतियों के सम्बन्ध में प्रायः निश्चयपूर्वक यह कह सकते हैं, कि अमुक व्यक्ति, रचना या घटना की तिथि यह है उसका पूर्वापर यह है, इत्यादि, और इसी प्रकार जहाँ हम यह भी प्रायः निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि पालि त्रिपिटक सर्वप्रथम ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य के लगभग सिंहल देश में संकलित एवं लिपिबद्ध हुए और भारत बौद्धों के पुस्तक साहित्य का इतिहास कुषाण काल (2री शती ई.) में महाकवि अश्वघोष और दार्शनिक नागार्जुन के साथ प्रारम्भ हुआ, ब्राह्मण परम्परा के ग्रन्थकारों और धार्मिक अथवा लौकिक ग्रन्थों के सम्बन्ध में वैसी कोई बात निश्चयपूर्वक कहना नितान्त कठिन है। तथापि, जिन विशेषज्ञ विद्वानों ने इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक पद्धति से विधिवत् अनुसंधान किया है, उनका यह प्रायः निश्चित मत है कि वर्तमान हिन्दू परम्परा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक साहित्य के इतिहास का वास्तविक प्रारम्भ शुंग काल में ब्राह्मण पुनरुत्थान से ही किया जाना चाहिये। वास्तव में इस परम्परा के वर्तमान में उपलब्ध पुस्तक साहित्य का अधिकांश, जिसमें वैदिक संहिताएँ (अपने अन्तिम रूप में), निरुक्त, अधिकांश उपनिषदें, श्रुतियाँ, स्मृति या धर्मशास्त्र, दार्शनिक सूत्र, वाल्मीकि की रामायण, सौति का महाभारत (जो मूलतः दश-सहस्री थी, अब जैसी शत-सहस्री नहीं), तथा विष्णु पुराण आदि प्राचीनतम पुराणग्रन्थ, शुंग काल और गुप्त काल के मध्य, अर्थात् 3-2री शती ई. पू. से लेकर 4-5वीं शती ईस्वी के बीच ही रचे गये हैं। लौकिक काव्य नाटकादि, क्लेसिकल संस्कृत साहित्य तथा ज्योतिष, गणित, वैद्यक आदि वैज्ञानिक साहित्य अधिकतर गुप्त काल एवं गुप्तोत्तर काल की देन हैं। इस ब्राम्हण पुनरुत्थान एवं पुस्तक साहित्य प्रवर्तन के प्रमुख आद्य पुरस्कर्ता महर्षि पतञ्जलि, कामन्दक, वाल्मीकि, सौति, यास्क, वात्स्यायन, कात्यायन, ईश्वर कृष्ण, आदि विद्वान् थे।

अस्तु, क्या आश्चर्य है कि उस समय के पूर्व जैनों का भी प्रायः कोई उल्लेखनीय पुस्तक साहित्य विद्यमान नहीं था। उनका धर्मशास्त्र या आगम जो द्वादशाङ्ग श्रुत कहलाता है, सर्वप्रथम अत्यन्त प्राचीन समय में—सभ्य युग के उदय काल में ही—प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित किया गया था। उनके पश्चात् एक के बाद एक अठारह तीर्थंकरों ने उसी सत्य का प्रतिपादन किया। तदनन्तर, रामायण में वर्णित घटनाओं और राम-रावणादि के समय में 20वें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ ने उसी उपदेश की प्रायः पुनरावृत्ति की। इतिहासकार इन घटनाओं का समय लगभग 2000 ई. पू. अनुमान करते हैं। 21वें तीर्थंकर नमिनाथ थे और 22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि थे जो नारायण कृष्ण के ताउजात भाई थे और महाभारत काल (अनुमानतः 15वीं शती ई. पूर्व) में विद्यमान थे। 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ वाराणसी के उरगवंशी राजकुमार थे। इनका सुनिश्चित समय 877-777 ई. पूर्व है। इनके द्वारा उपदेशित द्वादशांग श्रुत का प्रचार महावीर और बुद्ध के समय तक बराबर बना हुआ था। अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर 'निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र' (599-527) व्रात्य क्षत्रियों की वज्जि जाति के वैशाली गणतन्त्र (गणराज्य संघ) के अन्तर्गत कुण्डग्राम के लिच्छवियों के ज्ञातृक वंशी राजपुत्र थे। तीस वर्ष की अवस्था में इस बालब्रम्हचारी ने गृह का परित्याग करके बारह वर्ष पर्यन्त कठिन आत्मसाधना की। फलस्वरूप कैवल्य की प्राप्ति करके अर्हत तीर्थंकर के रूप में तीस वर्ष (557-527 ई पू.) पर्यन्त देश-विदेश में विहार करते हुए 'सर्व सत्वानं हित सुखाय' तीर्थंकरों के द्वादशांग में निहित सिद्धान्तों का निरन्तर प्रचार किया। उनके प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम ने पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के गणधरों की भाँति ही, अपने गुरु तीर्थंकर महावीर के उपदेशों का सार द्वादशाङ्ग श्रुत के रूप में संकलित किया अर्थात् उसे बारह अङ्गों और चौदह प्रकीर्णकों में विभाजित किया। प्रत्येक अंग में भी कई उपविभाग हैं, विशेषकर बारहवें दृष्टिप्रवाह अंग के पाँच विभाग हैं:—जिनमें एक का नाम 'पूर्व' है। पूर्वों की संख्या 14 है। इस प्रकार द्वादशाङ्ग श्रुत को बहुधा 'ग्यारह अङ्क-चौदह पूर्व' भी कहते हैं। बारहवें अंग का ही एक अन्य भेद 'प्रथमानुयोग' है जिस पर समस्त जैन पुराण साहित्य आधारित है। ये अङ्ग पूर्व विधिवत् 'वस्तुओं', 'अधिकारों' और 'प्राभृतों' में विभाजित हैं। यही भाषाबद्ध मूल जिनागम या जैन धार्मिक साहित्य है। सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी गुणों से विशिष्ट तीर्थंकरों द्वारा उपदेशित और परम ज्ञानी-ध्यानी तपस्वी गणधरों द्वारा गुंथित एवं संकलित जिनागम या द्वादशाङ्ग श्रुत में सम्पूर्ण मानवी आध्यात्मिक ज्ञान का सार समन्वित है। गौतमादि गणधरों के पश्चात् वह आगम ज्ञान या जैन श्रुत साहित्य गुरु-शिष्य परम्परा में मौखिक द्वार से प्रवाहित हुआ और लगभग सात शताब्दियों तक मौखिक प्रवाह की इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परा को पूर्ण सक्षम ज्ञानी-ध्यानी तपस्वी विर्ग्रन्थाचार्यों ने सुरक्षित बनाये रखा।

मौखिक द्वार से गुरु-शिष्य परम्परा में श्रुतज्ञान का प्रवाह तो चलता रहा, किन्तु अनेक कारणों से, चौथी शती ईसा पूर्व के मध्य के उपरान्त उसके विस्तार में द्रुतवेग से ह्रास होने लगा, मतभेद और पाठभेद भी उत्पन्न होने लगे। अतएव दूसरी शती ईसापूर्व के मध्य के लगभग कलिंग चक्रवर्ती महामेघवाहन खारवेल की प्रेरणा से मथुरा के जैन संघ के आचार्यों ने श्रुत संरक्षण की भावना से सरस्वती अन्दोलन चलाया, जिसका प्रधान उद्देश्य आगम साहित्य को पुस्तकारूढ़ करना तथा धार्मिक पुस्तक प्रणयन था। ज्ञान की अधिष्ठात्री पुस्तकधारिणी सरस्वती देवी को उक्त आन्दोलन का प्रतीक बनाया गया। फलस्वरूप ईस्वी सन् के प्रारम्भ के आसपास दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द, लोहार्य, शिवार्य आदि ने परम्परागत श्रुत के आधार से पाहुड़ आदि ग्रन्थ रचे, और गुणधराचार्य एवं धरसेनाचार्य ने तथा उनके सुयोग्य शिष्यों आचार्य आर्यमंक्षु, नागहस्ति, पुष्पदन्त, भूतबलि आदि ने अवशिष्ट आगमों के महत्वपूर्ण अंशों का उपसंहार करके उन्हें पुस्तकारूढ़ किया। उमास्वाति, विमलसूरि, समन्तभद्र, यतिवृषभ आदि अन्य कई आचार्यपुंगवों ने भी धार्मिक साहित्य के विविध अंगों का आगमाधार से प्रणयन किया।

इस काल में जैन संघ दो भागों में विभक्त हो चुका था। दिगम्बर आम्यना के मुनि स्वयं को मूलसंघी कहते थे। दूसरी शाखा जो कालान्तर में श्वेताम्बर नाम से प्रसिद्ध हुई वह अपनी परम्परा में सुरक्षित अवशिष्ट श्रुतागम को ही मान्य करती थी। उसने भी उसकी वाँचना एवं संकलन करने का प्रयास किया। अतएव उसमें एक-एक करके आगमों की तीन वाँचनाएँ हुईं–दो मथुरा में और एक वल्लभी में। सौराष्ट्र के वल्लभी नगर में आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में, पाँचवी शती ईस्वी के मध्य के लगभग सम्पन्न तीसरी वाँचना में ही इस परम्परा में सुरक्षित आगमों का संकलन एवं लिपिबद्धीकरण हुआ। यह भी मूल द्वादशांग श्रुत का अत्यन्त अल्पांश ही था। तथापि, आगमों के इस प्रकार पुस्तकारूढ़ होने से उन पर रचे जानेवाले निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि अत्यन्त विपुल व्याख्या साहित्य के लिए द्वार उन्मुक्त हो गया। विविध विषयक, विभिन्न भाषाओं और शैलियों में अनगिनत स्वतन्त्र रचनाएँ भी रची जाने लगीं, और उभय सम्प्रदाय के मनीषी आचार्य जैन भारती के भंडार को उत्तरोत्तर समृद्ध से समृद्धतर करते गये।

अस्तु, जैन धार्मिक साहित्य के आद्य प्रस्तोता तो ऋषभादि-महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर भगवान हैं, उनके बाद गौतमादि गणधर भगवान और भद्रबाहु प्रभृति श्रुतकेवलि हैं, और अन्त में कुन्दकुन्दादि-देवर्द्धि पर्यन्त श्रुतधर आचार्य पुंगव हैं।

***

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org